International Journal of Enhanced Research in Educational Development (IJERED)
ISSN: 2320-8708, Vol. 6 Issue 5, Sep-Oct, 2018, Impact Factor 3.275

भारतीय जीवन दर्शन में संस्कार की महत्ता

डॉ आशा देवी

एसोसिएट प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अगस्त्यमुनि रूद्रप्रयाग, उत्तराखण्ड

शोध सारांश

प्राचीन काल से ही भारतीय समाज, संस्कृति और धर्म में संस्कारों का मानव जीवन में महत्वपूर्ण स्थान रहा है। संस्कारों से व्यक्ति के जीवन में बाहरी व आन्तरिक शुद्धता आती है। व्यक्ति के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास होता है। चरित्र दृढ़ता, आचरण में शुद्धता, नैतिक व सामाजिक मूल्यों और आदर्शों का संवर्द्धन होता है। इस प्रकार विविध/विभिन्न संस्कारों में भी जाने वाली विधियों व क्रियाओं का प्रमुख उद्देश्य भारतीय समाज, संस्कृति तथा धर्म के बीच परस्पर एकरूपता, सामंजस्य बनाये रखना समाजीकरण, लौकिक सुख–समृद्धि की कामना, इच्छित वस्तुओं की प्राप्ति, विघ्न–बाधाओं को दूर करना, तथा नैतिकता का संवर्द्धन करना था। संस्कारों से संस्कृत तथा आठ आत्म गुणों से युक्त व्यक्ति ब्रहमलोक में पहुंचकर ब्रहम पद को प्राप्त कर लेता है जिससे वह फिर कभी च्युत नहीं होता।

प्राचीन काल से ही भारतीय समाज, संस्कृति और धर्म में संस्कारों का मानव जीवन में महत्वपूर्ण स्थान रहा है। मानव जीवन के भौतिक एवं आध्यात्मिक विकास के साथ–साथ सुव्यवस्थित जीवन जीने हेतु संस्कारों का विधान किया गया था। संस्कारों के माध्यम से मनुष्य अपने जीवन को सुसंस्कृत, परिष्कृत और उन्नत बनाता है। संस्कारों के द्वारा मनुष्य के जीवन में बाह्य और आन्तरिक शुद्धता आती है।

इस प्रकार भारतीय समाज, संस्कृति और धर्म में अनेक परिवर्तनों के बावजूद भी संस्कारों का महत्व सामाजिक, धार्मिक, नैतिक और सांस्कृतिक जीवन से जुड़ा है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी इन संस्कारों का महत्व मानव जीवन से है।

भारतीय समाज, संस्कृति व धर्म में मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन जन्म से लेकर मृत्यु तक और उसके बाद भी संस्कारों द्वारा आवृत्त रहता है। संस्कार विहीन मनुष्य का जीवन अपवित्र, अशुद्ध, अधार्मिक, अनैतिक, अव्यवस्थित माना गया है। जन्म से मनुष्य पूर्णतः अशुद्ध, असंस्कृत होता है। हमारे आदि ऋषियों ने जिन संस्कारों की कल्पना की थी उसका प्रमुख उद्देश्य था संस्कारों द्वारा मनुष्य के जीवन को शुद्ध, पवित्र, धार्मिक, नैतिक, व्यवस्थित करना। संस्कारवान मनुष्य का जीवन शुद्ध, पवित्र, धार्मिक, नैतिक और व्यवस्थित होता है।

शारीरिक, आत्मिक शुद्धिकरण, विघ्न–बाधाओं को दूर करने देवताओं को प्रसन्न व कृपा दृष्टि प्राप्त करने के लिए मनुष्य यज्ञ, धार्मिक विधि–विधान, अनुष्ठान, कर्मकाण्ड, प्रार्थना, भजन–कीर्तन, ध्यान व स्तुति इत्यादि करता था।
मनुष्य इन्हीं संस्कारों के द्वारा सामाजिक, धार्मिक, नैतिक व सांस्कृतिक कार्यों को सम्पन्न करता था।

डॉ राजबलि पाण्डेय के अनुसार – हिन्दू समाज में सर्वाधिक प्रचलित 16 संस्कार माने जाते हैं, जिनको ''षोडष संस्कार'' के नाम से भी जाना जाता है।[1]

1. गर्भाधान संस्कार– विवाहोपरान्त प्रथम संस्कार है। इस संस्कार का सम्बन्ध संतान की कामना द्वारा पुरूष–स्त्री के गर्भ में सन्तान के बीजारोपण से है। स्त्री का गर्भवती होना ही गर्भाधान संस्कार कहलाता है। जिस कर्म के द्वारा पति अपनी पत्नी में गर्भ स्थापित करता है उसे गर्भाधान संस्कार कहते है।[2]

स्त्री के ऋतु स्नान के बाद चौथी से सोहलवीं रात्रि के अन्तिम प्रहर का समय उपयुक्त माना गया है। याज्ञवाल्क्य तथा मनु के अनुसार 8वीं, 15वी.,30वीं रात्रियां गर्भाधान के लिए पूर्ण वर्जित बताई गयी है।[3]

गर्भाधान के लिए दिन का समय निषिद्ध था।[4] (याज्ञवाल्क्य स्मृति में कहा गया है। गर्भाधान मृतौ[5] अलबरूनी गर्भाधान संस्कार के विषय में लिखता है कि अगर व्यक्ति, सन्तान के निमित्त पत्नी के साथ सहवास/समागम करता है तो यह उसका कर्तव्य है कि वह गर्भाधान नाम यज्ञ करे। परन्तु परवर्ती काल में इस संस्कार का (महत्व कम होता गया) प्रमुख उद्देश्य पितृ ऋण से मुक्त होना था। कुछ शास्त्रकारों ने इस संस्कार को ''चतुर्थी कर्म'' या ''चतुर्थी होम'' भी कहा है।[6]

2–पुंसवन संस्कार– गर्भ धारण के उपरान्त तीसरे माह में पुत्र प्राप्ति हेतु इस संस्कार को किया जाता था। गृह्यसूत्र में इस संस्कार के द्वितीय व तृतीय माह को उपयुक्त माना गया है। पुत्र प्राप्ति के लिए चन्द्रमा का पुष्य नक्षत्र में स्थित होना शुभ और मंगलकारी माना गया है।[7] गर्भपात से बचाने के लिए गर्भवती स्त्री को रात्रि के समय बरगद की छाल का रस नाक के दाहिने छिद्र में डाला जाता था।

वायु पुराण तथा ब्रह्माण्ड पुराण में वर्णित है कि तेजस्वी पुत्र प्राप्ति हेतु यह संस्कार किया जाता था।[8]

3–सीमान्तोन्नयन संस्कार– इस संस्कार को गर्भधारण के चौथे माह में किया जाता था। इस संस्कार में गर्भिणी स्त्री के केशों (सीमान्त) को ऊपर उठाकर सम्पन्न किया जाता था।[9] आश्वालायन गृह सूत्र में वर्णित है कि गर्भवती स्त्री को अशुभ शक्तियां (राक्षसियां) गर्भ को समाप्त करने अथवा भावी सन्तान को कष्ट व हानि पहुंचाने के लिए उद्यत रहती हैं। इसके निवारण हेतु तथा माता के स्वस्थ एवंम् गर्भस्थ शिशु के दीर्घायु होने के लिए सम्पन्न किया जाता था। विष्णु पुराण में कहा गया है कि इस संस्कार में नान्दीमुख नामक (पूर्ववर्ती तीन पितरों) की पूजा करनी चाहिए।[10] सीमान्तोन्नयन संस्कार का प्रमुख उद्देश्य था शान्तिपूर्ण वातावरण बनाकर गर्भस्थ स्त्री को शारीरिक और मानसिक रूप से आराम देना।

4– जातकर्म संस्कार– जातकर्म संस्कार सन्तानोत्पत्ति के पश्चात् सम्पन्न किया जाता था। मनु के अनुसार नाभि छेदन (नार काटने) के पहले किया जाता था।[11] अलबरूनी ने लिखा है कि पुत्र उत्पन्न होने के बाद तथा माता द्वारा उसका पोषण प्रारम्भ होने के बीच जात कर्म नामक तीसरा यज्ञ किया जाता था।[12] जातकर्म संस्कार में पिता विधिपूर्वक स्नानादि करके नान्दीमुख नामक पितरों का पूजन करता था।[13] इसके पश्चात् आर्शीवचनों (आशीर्वाद) मन्त्रों का उच्चारण करते हुए स्पर्श करता था। आश्वालयन गृहसूत्र में कहा गया है कि जब पुत्र जन्म लेता था तब पिता स्वर्ण की शलाका से शहद तथा घी चटाता था या जिह्वा (जीभ) पर ॐ लिखता था।[14] जातकर्म संस्कार का प्रमुख उद्देश्य सन्तान पर पड़ने वाली अशुभ अनिष्ट, अमंगलकारी, विघ्न–बाधाओं को दूर करना था।

5–नामकरण संस्कार– भारतीय समाज, संस्कृति तथा धर्म में नाम का अत्यधिक महत्व है। ब्राह्मणों ग्रथों, गृह्यसूत्रों तथा स्मृतियों में नामकरण संस्कार का वर्णन मिलता है। मनु के अनुसार जन्म के दसवें या बारहवें दिन शुभ, दिन, नक्षत्र व मुहूर्त्त निकालकर नामकरण संस्कार सम्पन्न करना चाहिए। विश्वरूप व कुल्लुक के अनुसार ग्याहरवें दिन[15] मेधातिथि के अनुसार दसवें दिन, बृहस्पति के अनुसार दसवें, बारहवें, तेरहवें, सोहलवें, उन्नीसवें तथा बत्तीसवें दिन नामकरण संस्कार सम्पन्न करना चाहिए।
बाणभट्ट ने कादम्बरी में लिखा है कि तारापीड़ ने अपने पुत्र चन्द्रपीड़ का नामकरण पुष्य नक्षत्र में किया था। मनु के अनुसार कन्या/पुत्री का नाम सुखकर, स्पष्ट अर्थवाला, उच्चारण करने योग्य, मंगलसूचक, शुभकर, मनोहर अन्त में दीर्घ अक्षर अर्थात् आ, दा, लगाया जाना चाहिए। आपस्तम्ब गृह्यसूत्र में नदियों और वृक्षों के नाम से भी पुत्रियों के नाम रखने का वर्णन मिलता है। मनु के अनुसार ब्राह्मण का नाम मंगलसूचक, क्षत्रिय का बल सूचक, वैश्य का धन सूचक, शूद्र का निन्दासूचक शब्दों युक्त होना चाहिए।

बोधायन गृह्यसूत्र में वर्णित है कि ब्राह्मण के नाम में, शर्मा, क्षत्रिय के नाम में वर्मा, वैश्य–गुप्ता, शूद्र के नाम में दास लगाने की परम्परा थी।[16]

6– निष्क्रमण संस्कार– इस संस्कार को शिशु के जन्म के बारहवें दिन से चौथे माह में सम्पन्न किया जाता था। पारस्कर गृहसूत्र व मनुस्मृति के अनुसार बालका का निष्क्रमण/घर से बाहर जन्म के चौथे माह में होना चाहिए। सन्तान को माँ की गोद में देकर सूर्यदर्शन कराया जाता था। सूर्य दर्शन के पश्चात शुभ मुहूर्त्त में देवताओं का स्मरण करते हुए शिशु को घर से बाहर प्राकृतिक वातावरण में लाया जाता था।[17]

7– अन्नप्राशन संस्कार– मनुस्मृति, याज्ञवाल्क्य स्मृति तथा गृह्यसूत्रों के अनुसार इस संस्कार को शिशु के जन्म के उपरान्त छठे महीने में किया जाता था। इस संस्कार में शहद, दूघ, दही, घी, खीर को चटाया जाता है। मारकाण्डे पुराण में लिखा है कि इस संस्कार में शहद, घी के साथ–साथ खीर खिलाने की परम्परा थी। शिशु की वाणी में मधुरता व प्रवाह लाने के लिए भारद्वाज पंक्षी का मांस व मछली खिलाने की प्रथा थी। शिशु को सर्वप्रथम अन्न खिलाने की प्रथा पारसियों में मिलती है। भारत–ईरानी सम्बन्धों के कारण अन्नप्राशन संस्कार भारतीय समाज, संस्कृति और धर्म का अभिन्न अंग बन गई।

8– चूड़ाकर्म (मुण्डन) संस्कार– यजुर्वेद व अथर्ववेद में इस संस्कार का सर्वप्रथम वर्णन मिलता है,[18] पारस्कर के अनुसार इस संस्कार को शिशु के जन्म के प्रथम वर्ष तीसरे, पाँचवें अथवा सातवें वर्ष की समाप्ति से पूर्व कर लेना चाहिए। मनुस्मृति के अनुसार, चूड़ाकर्म संस्कार प्रथम या फिर तीसरे वर्ष में कर लेना चाहिए।[19] आश्वालयन गृ.सू. पारिवारिक रीति–रिवाज तथा परम्परा के अनुसार करना चाहिए। पारस्कर गृ.सू. के अनुसार माता ब्राहमणों को भोजन कराकर, बालक को स्नान कराकर नये वस्त्र पहनाकर, गोद में लेकर, अग्नि के पश्चिम में बैठती थी इसके पश्चात् पिता अग्नि में आहुति देकर और मंत्र पढकर विधि–विधान पूर्वक शिखा के बालों को (चोटी के बालों) छोड़कर शेष केश काट दिये जाते थे। विष्णु पुराण में कहा गया है कि ''इस संस्कार को सम्पन्न करते समय नान्दीमुख नामक पितरों की पूजा अर्चना करनी चाहिए।''[20]

9–**कर्णछेदन या कर्णवेद्य संस्कार –** भारतीय समाज, संस्कृति तथा धर्म में यह वैदिक काल से ही प्रचलित था।[21]
सुश्रुत का विचार है कि रोग निवारणार्थ व अलंकरण के निमित्त कर्णछेदन संस्कार करना चाहिए। बृहस्पति मुनि के अनुसार यह संस्कार जन्म के दसवां, बारहवां या सोलहवां दिन या फिर सातवां, आठवां महीना उचित माना जाता था। गर्ग ऋषि ने छठां, सातवां, आठवा, बारहवें महीने को, सुश्रुत ने छठां, सातवां वर्ष, बोधायन ने सातवां, आठवें महीने को उचित बताया है। कात्यायन तीसरे, पाँचवें वर्ष को शुभ दिन, मुहूर्त्त में बालक को पूर्व की दिशा में मुख करके पहले दाहिने कान का फिर बायें कान का छेदन करना चाहिए। कर्णछेदन के समय सोने या ताम्र की सुई का प्रयोग करना चाहिए तत्पश्चात स्वर्ण बाली कान में डाल दी जाती थी। वर्तमान समय में यह संस्कार केवल सौंदर्य का प्रतीक बन गया है।[22]

10. **विद्यारम्भ संस्कार** –जब बच्चे का मस्तिष्क शिक्षा ग्रहण करने योग्य हो जाता था, तब यह संस्कार सम्पन्न किया जाता था। इस संस्कार को जन्म के पाँचवे वर्ष तथा उपनयन संस्कार से पूर्व संपादित किया जाता था। शुभ दिन व मुहूर्त्त में शिक्षक द्वारा काष्ट की तख्ती पर ऊँ और स्वास्तिक के साथ वर्णमाला लिखकर बालक को पूर्व दिशा में बैठाकर अक्षर ज्ञान/अक्षराम्भ कराया जाता था। इस पकार यह संस्कार बुद्धि और ज्ञान का संस्कार था।

इसके पश्चात गुरु बालक को वस्त्र, आभूषण व धन दान–दक्षिणा स्वरुप देता था।

11. **उपनयन संस्कार–** भारतीय समाज–संस्कृति व धर्म में उपनयन संस्कार का सर्वाधिक महत्व है। उपनयन का तात्पर्य स्वाध्याय या वेद अध्ययन से है। जब बालक अध्ययन हेतु आचार्य/गुरू के पास जाता था, उपनयन का अधिकार केवल द्विजों को था। शूद्रों को इस संस्कार से वंचित रखा गया था। इस संस्कार के माध्यम से व्यक्ति गुरू के सानिध्य में रहकर वेदों का, यम–नियम की शिक्षा ग्रहण करता था।

गौतम व मनु के अनुसार ब्राहमण के पुत्र का जन्म सें आठवें वर्ष, क्षत्रिय के पुत्र का जन्म से ग्यारहवें वर्ष, वैश्य के पुत्र का जन्म से बारहवें वर्ष उपनयन संस्कार/यज्ञोपवीत करना चाहिए।[23]

इस संस्कार को सम्पन्न करते समय बालक को तीन सूत्रों वाला धागा जिसे ''यज्ञोपवीत'' कहते हैं दिया जाता था। यज्ञोपवीत धारण के समय से बालक ब्रहमचारी हो जाता था। गुरू या आचार्य के समीप जब वह जाता था तो गुरू उसे ब्रहमचर्य मागा मिति कहलवाते थे।[24]

यज्ञोपवीत, मेखला और मृगचर्म धारण करने के पश्चात ब्रहमचारी दण्ड धारण करता था। ब्रहमचारियों के दण्ड व मंत्र वर्णानुसार थे। ब्राहमण को दण्ड ढाक का, क्षत्रियों को दण्ड बिल्ब का, वैश्य का गूलर का होता था। ब्राहमण को ''गायत्री मंत्र'' क्षत्रियों, भिष्टुप मंत्र, वैश्य को जगती छंद से गुरू मंत्र दिया जाता था। उपनयन संस्कार के अवसर पर भिक्षा मांगने का भी विधान था। ब्रहमचर्य जीवन के लिए भिक्षा आवश्यक थी। भिक्षा सर्वप्रथम माता और भगिनी से मांगनी चाहिए। अन्त में बाल को स्नानादि कराकर नवीन वस्त्र धारणकर ब्राहमण को भोजन कराकर इस संस्कार को सम्पन्न किया जाता था। यज्ञोपवीत (जनेऊ) तीन सूत्र/ धागा तीनों गुणों सत, रज, तम के प्रतीक थे साथ ही त्रिऋण– पितृ ऋण, देव ऋण, ऋषि ऋण का स्मरण कराते थे।

12– वेदारम्भ संस्कार– वेदों **का अ**ध्ययन शास्त्रोक्त विधि–विधान पूर्वक किया जाता था। मनु के अनुसार वेदों का अध्ययन करने के पहले आचमन करके ब्रह्मांजलि बांधकर हलके वस्त्र धारण करके जितेन्द्रिय होना चाहिए। वेदारम्भ के पूर्व और अन्त में ''ऊँ'' का आवश्यक होता था।

13–. केशान्त या गोदान संस्कार– इस संस्कार को सोहलवें वर्ष सम्पनन किया जाता था। इस संस्कार में आचार्य को गोदान या ब्राहमण को एक गाय दक्षिणा स्वरूप दी जाती थी इसलिए इसे गोदान संस्कार भी कहते हैं। विद्यार्थी का पहली बार दाढ़ी–मूंछ का मुंडन किया जाता था। मनु के अनुसार गर्भ से सोलहवें वर्ष ब्राहमण का, 22वें वर्ष में क्षत्रिय का, 24वें वर्ष में वैश्य का केशान्त संस्कार करना चाहिए। कभी–कभी इस संस्कार को विवाह से पूर्व भी सम्पन्न किया जाता था।[25]

14–.समावर्तन संस्कार– शिक्षा पूर्ण या पूरी हो जाने के पश्चात गुरू शिष्य को (जब ब्रहमचारी अथवा विद्यार्थी) अपने गृह वापस जाने की आज्ञा देता था तब गुरू आश्रम में ब्रहमचारी अथवा विद्यार्थी का समावर्तन संस्कार होता था। इस संस्कार के दिन मध्यान में शिष्य गुरू को प्रणाम करके यज्ञी वृक्ष से ''समिधा'' लाकर हवन करता था तथा हवन कुण्ड में जल से भरे आठ कलश रखे जाते थे जो आठ दिशाओं में प्रसार के प्रतीक थे। इसके पश्चात केशान्त संस्कार होता था। स्नान के बाद ब्रहमचारी/शिष्य ब्रह्मचर्य के प्रतीक स्वरूप दण्ड, मेखला, मृगचर्म आदि का परित्याग कर गुरू की आज्ञा से सुन्दर वस्त्र, आभूषण धारण करता था। इस प्रकार स्नातक गुरू का अन्तिम उपदेश और उपदेश और आर्शीवाद प्राप्त कर (प्रत्यावर्तन) अपने गृह की ओर प्रस्थान करता था। इस संस्कार का उद्देश्य शैक्षणिक जीवन समाप्त कर वैवाहिक व गृहस्थ जीवन में प्रवेश करता था।

15– विवाह संस्कार– इस संस्कार में व्यक्ति ब्रहमचर्य से गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है जहाँ से व्यक्ति के ऊपर परिवार और समाज के प्रति उत्तरदायित्व प्रारम्भ होता है। इसमें वर–वधू वैवाहिक अग्नि के चारों सात बार घूमते थे। प्रत्येक फेरे में मंत्र उच्चारण के साथ–साथ सात वचन पूरे करने का करार/वायदा करता है। तैतरीय संहिता में लिखा है कि तीन ऋणों में से दो पितृ ऋण व देव को चुकाने के लिए विवाह आवश्यक है।[26] त्रिऋण से मुक्त होने के साथ–साथ वंश परम्परा को बनाये रखने के लिए भी विवाह आवश्यक है।

16– अन्तेष्ठीय संस्कार– यह संस्कार मृतक के परलोक में शान्ति की कामना हेतु सम्पन्न किया जाता था। सभी संस्कार जीवन का उत्थान करने वाले थे। जबकि अन्त्येष्टि संस्कार का उद्देश्य आत्मा का अभ्युदय करना था। बोधायन गृह्यसूत्र के अनुसार इस संस्कार के द्वारा परलोक विजित होता है।[27] इस संस्कार में पार्थिव शरीर को दाह क्रिया के लिए बाँस की अर्थी या बैलगाड़ी प्रय्रे में लाई जाती है।[28]

शवयात्रा में सगे सम्बन्धियों के साथ मित्रादि होते थे, जिसमें जेष्ठ पुत्र सबसे आगे रहता था।[29] शव को स्नानादि कराकर घी, चन्दन, नारियल, कुश, पुष्पमाला से सजा कर, लकड़ियों की चिता पर रखकर दाह संस्कार करने की प्रथा थी। इसके पश्चात् ूतक का परिवार तेरहवें दिन तक अशौच की स्थिति में रहते थे। मृतक आत्मा की शान्ति के गरूण पुराण का पाठ किया जाता

था। अशौच की शुद्धि के लिए श्राद्ध क्रिया की जाती थी। पिण्डदान– श्राद्ध क्रिया तथा ब्राह्मण भोजन के बाद मृतक का परिवार शुद्ध हो जाता था। आज भी भारतीय समाज, संस्कृति व धर्म में शास्त्रोक्त विधि–विधान से इस संस्कार को सम्पन्न किया जाता है।

निष्कर्ष

उपरोक्त सभी संस्कार भारतीय समाज, संस्कृति व धर्म में मान्य थे। जिसका वर्णन गृह्यसूत्रों, धर्मसूत्रों, पुराणों एवम् स्मृति ग्रन्थों में मिलता है। अधिकांश संस्कार द्विजों के लिए थे। स्त्रियाँ इन संस्कारों से वंचित थी। आधुनिक काल में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने हिन्दू धर्म व समाज की इन कुरीतियों को समाप्त कर एक नयी दिशा प्रदान की।

संदर्भ

[1] वीरमित्रोदय संस्कार प्रकाश भाग–1 पृ0 142, हिन्दू संस्कार पृ0 सं0 35

[2] अर्थववेद–5,25,3,5 बृ.उप.6.4.21

[3] याज्ञवाल्क्य 1/79, मनु 3/45

[4] बौ0 गृ0 सू0 1.7.47

[5] याज्ञवाल्क्य स्मृति 1.11

[6] आश्वालायन गृ0सू0– 1/15/1–4

[7] पारस्कर गृहसूत्र 1.14–2, बोधायन गृहसूत्र–1–9–1

[8] वायु पुराण 96/12, बह्माण्ड पुराण– 3/17/12

[9] बोधायन गृ0सू0 1/9/1

[10] विष्णु पुराण–3.13.61

[11] मनुस्मृति 2.29

[12] ग्यारहवीं सदी का भारत, पृ0–221

[13] विष्णु पुराण 3.10.4.5

[14] आश्वालायन गृ0सूत्र 1–15–14

[15] कुल्लुक मनु0 2.30

[16] बोधायन गृ0सू0 1/15/14

[17] पारस्कर गृह्यसूत्र –1.17, मनुस्मृति–2.34

[18] पारस्कर गृ0सू0–1–19

[19] मनुस्मृति 2/35

[20] विष्णु पुराण (3/13/16)

[21] अर्थववेद–6

[22] गर्ग, उदधृत–हिन्दू संस्कार पृ0–130

[23] गौ धर्मसूत्र– 1.6.12, पारस्कर गृहसूत्र–2/3

[24] पारस्कर गृ0सू0 2/3

[25] मनु स्मृति 2/65

[26] तैतरीय संहिता–6/3/10/15

[27] बेधासन गृहसूत्र 1/43

[28] अश्वालायन गृह्यमूत्र 4–11

[29] परसकर गृ0 सू0 3/19